नक़ल मानपत्र जो श्रीमान् राजाधिराज नाहरसिंहजी वर्मा शाहपुराधीश ने स्वामीजी को अर्पण किया ।

स्वस्ति श्री सर्वोपकारक कारुणिक परमहंस श्रीपरिव्राजकाचार्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वतीजी महाराज के चरणारविन्दों में महाराजाधिराज शाहपुरेश की वारम्वार नमस्तेऽस्तु ।

अपरंच-यहां आप का विराजना सार्द्धद्वयमास पर्य्यन्त हुआ तथापि आप के सत्य धर्मोपदेश के श्रवण से मेरी आत्मा तृप्त न हुई । आशा थी कि आप ग्रीष्मान्त अत्र स्थित होते, परन्तु योधपुराधीशों की ओर से दर्शनों की और वेदोक्त धर्म उपदेश ग्रहण की, पुनः सत्याचरण असत्य का त्याग और आप के मुखारविन्द से श्रवण करने की अभिलाषा देखकैं आपने वहां पधारना स्वीकार किया और भवच्छरीर भी करोड़ों मनुष्यों के उपकारार्थ प्रगट हुआ है, यह समझ के मेरी भी सम्मति यही हुई कि आप का पधारना ही उत्तम है ।

यही समझ के यहां विराजने की प्रार्थना नहीं की आशा है कि कृतकृत्य करने के निमित्त पुनरागमन करेंगे । इत्यलम् ।

ज्येष्ठ कृष्ण ४ चतुर्थी सं० १९४० वि० हस्ताक्षर नाहरसिंहस्य

वैदिक यन्त्रालय 1961 वि.
प्रथमबार
Mp 367—385
सन् 1904

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
परिग्रहण क्रमांक 1786

ओ३म्

दयानन्द महिम्ना म:

ी १०८ महर्षि स्वामीदयानन्द सरस्वती जी के गुरु वामी विरजानन्द सरस्वती दण्डीजी का

जीवनचरित्र

(श्रीयुत धर्मवीर स्वर्गवासी पं० लेखराम जी आर्यपथिक कृत)

यौगिक शब्दों के पारस पत्थर की खोज करने वाले

ऋषि विरजानन्द सरस्वती स्वामी ॥

पञ्जाबदेश के कर्तारपुर प्रान्त के एक छोटे से गङ्गापुर नामी ग्राम में व्यास दी के किनारे महाराजारणजीतसिंह के राज्य समय में एक नारायणदत्त नामी ब्रा ण सारस्वत भारद्वाजगोत्री शारद जाति का रहता था। कौन जानता था कि इस गृह में वह मणि उत्पन्न होगी कि जो पृथिवी परसे घोर अंधकारको दूर करने में काशका काम करेगी। कौन कह सका था कि नारायणदत्त का नाम संसार के इति- समें लिखा जायगा। और किस को ज्ञात था कि आर्य्यों के गुप्त विद्या भण्डार तथा नुष्यमात्र के मुख्य धन वेद के विश्वास को प्रचार करने की विधि का पारस पत्थर र के सपूत के हाथ पड़ेगा। प्रायः १०० सौ वर्ष व्यतीत हुवे कि नारायणदत्त के यहां वत् १८५४ विक्रमी में एक बालक ने जन्म लिया। पांच वर्ष की अवस्था में यह बाल- विस्फोटक (चेचक) रोग से ग्रस्त हुआ। इस दुःखदायक रोग के कारण बालक नुहीन हो गया। आठ वर्ष की अवस्थापर्यन्त इसको पिता सारस्वत और संस्कृत ाते रहे। ११वर्ष की आयु तक उक्त बालक का पालन पोषण माता पिता द्वारा होता ा। परन्तु बारहवें वर्ष में इसको माता पिता के देहान्त होने के कारण अपने भ्राता

के शरण में आना पड़ा। परन्तु इस अधोगति के कराल काल में प्रायः भ्राता शब्द क
शत्रु और भ्रातृपत्नी का दुःखदायिनी अर्थ माना जा चुका था। बारहवें वर्ष ही में भा
भौजाई उस अन्धे बालक को रोटी के स्थान में गाली देने लगे। और दुःखों से वा
लक का प्राण सङ्कट में पड़ गया। भाई भौजाई की कठोरता के कारण उस १२ वर्ष
के बालक ने अन्त में वन का मार्ग पकड़ा। और सदा के लिये उन से विदा हुआ
दुःखों पर दुःख झेलता हुआ वा कर्मफल भोगता हुआ, यह लड़का अति कठिनत
से हृषीकेश में पहुंचा। उस समय इस की आयु लगभग १५ वर्ष की थी। देश का
ल का व्यवहार जानने तथा भ्राता तक का विरुद्ध होना समझ उदास और निराश
हो जगत्पिता की शरण में तत्पर होकर अपने दग्ध हृदय को शान्ति देने लगा
तथा च कहा जाता है कि तीन वर्ष गङ्गा में खड़े होकर गायत्री का परम जप उत्तम
रीति से करते हुये मन और अन्तःकरणरूपी चक्षु में ज्ञान का अञ्जन लगा कर प्र
काशित किया। खाने पीने के लिये जो कुछ फल फूल मिल जाते उसे खालेते नहीं
तो भूखे रह कर समय व्यतीत करते। भिक्षा कभी किसी से न मांगते थे। परन्तु
अत्यन्तावश्यकता पर किसी मठ से कुछ अन्न लेलिया करते थे। ये नवयुवक बाल्या
वस्था को समाप्त करके एक तपस्वी की अवस्था को प्राप्त होगये। हृषीकेश उस स
मय आज कल के समान घनी बस्ती और सुखदायक स्थान न था, इस कारण हा
निकारक पशु चारों ओर रात्रि को गर्जा करते थे। परन्तु वह धैर्यवान् ईश्वराश्रित
ऐसी भयानक जगह में ही तपस्या द्वारा प्रज्ञाचक्षु प्राप्त करने का यत्न करते थे। जब
इसी प्रकार तीन वर्ष साधन और तपस्या में व्यतीत होगये तो एक रात्रि को इन्हें
स्वप्न में ऐसा प्रकट हुआ कि "जो तुम को होना था वह होगया अब यहां से चल
जावो" तथाच-वह नवयुवक तपस्वी बड़े साहस से उस भयानक वन को पार कर
के १८ वर्ष की अवस्था में हरद्वार आ पहुंचा। तथा यहां पर एक विद्वान् गौड़ स्वा
मी पूर्णानन्द सरस्वती जी से इन की भेंट हुई। तथा इसी स्थान पर उनसे इन वि
रक्त वीर ने संन्यास ग्रहण किया और अपना नाम विरजानन्द रक्खा। यह स्वामी
उत्तरदेशीय पहाड़ के निवासी थे इन से संन्यास लेने के पश्चात् विरजानन्द जी ने
विद्योपार्जन का विचार किया। तपस्या करने के पश्चात् इन की कविता शक्ति जाग
उठी थी, इस से इन्होंने रामचरित्र सम्बन्धी श्लोक रचे ॥

बहुत काल तक हरद्वार में रह कर एक ब्राह्मण से मध्यकौमदी षड्लिङ्ग प
र्यन्त पढ़ी। और इस के पश्चात् स्वयं विद्यार्थियों को पढ़ाना आरम्भ किया। यह
तक कि स्वयं भी मध्यकौमदी पढ़ाने लग गये। वहां से चल कर कुछ दिन कनखल

ाम में रहे, और किसी की सहायता से यहां पर सिद्धान्तकौमुदी विचारते और विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे। कनखल से गंगा के किनारे २ काशी को पधारे, वहां पर एक वर्ष से कुछ अधिक ठहर कर मनोरमा, शेखर, न्याय, मीमांसा और वेदान्त के ग्रन्थ पढ़े। अपने अध्ययन के साथ ही विद्यार्थियों को भी बराबर पढ़ाते रहे। वहां अपनी विद्या के कारण प्रज्ञाचक्षु स्वामी की उपाधि से प्रतिष्ठित हुये। वहां से गयानगर की ओर २२ वर्ष की आयु में पैदल प्रस्थान किया। मार्गमें एक स्थान पर उन को दुष्ट चोरों ने चारों ओर से घेर कर पकड़ लिया। दैवयोग से वहां दक्षिण देश गवालियर राज्य के सरदार एक पण्डित सहित उतरे हुये थे। इन की चिल्लाहट पर उक्त सरदार के नौकरों ने पुकारा, तिस पीछे विरजानन्दजी ने सर्वशास्त्रान्त संस्कृत में सुना दिया जिस के सुनते ही पण्डित झट पट सहायतार्थ पहुंच गये और चोरों से महात्मा को बचा लिया। वे डरपोक चोर भाग गये। और सरदार के नौकर लोग स्वामीजी को डेरे पर ले आये। बड़े आदर सत्कार से प्रज्ञाचक्षु स्वामी का पांच दिवस पर्यन्त उन्होंने आतिथ्य सत्कार किया। छठे दिन यहां से विदा हो स्वामीजी गया को पधारे। दीर्घ काल तक गया में वेदान्त शास्त्र पढ़ने पढ़ाने से विज्ञान बढ़ाने के पश्चात् बङ्गाल की राजधानी कलकत्ता को गये और वहां से लौटते हुये सोरों ग्राम में जो गंगा के तट पर है, बहुत दिन तक विचार में निमग्न रहे॥

इन्हीं दिनों अलवर के महाराज विनयसिंह सोरों में गङ्गास्नान को आये थे। उस समय वे स्नान कर रहे थे उस ही समय पर ये गङ्गा में खड़े हुये मधुर उच्च स्वर से शङ्कराचार्य का विष्णुस्तोत्र पाठ कर रहे थे। महाराजा इन की सुरीली रसीली मनोरञ्जनी वाणी सुन के मोहित हो गये और पत्थर सदृश स्थिर हो के सुनते रहे। जब यह समाप्त कर के जल से बाहर निकले तो महाराजा ने निवेदन किया कि भगवन्! आप मेरे साथ अलवर को चलें। स्वामीजी ने यह कहते हुए कि "आप राजा हैं और मैं त्यागी हूं मेरा आप का कोई सम्बन्ध नहीं" अङ्गीकार न किया।

तत्पश्चात् महाराजा विनयसिंहजी स्वामीजी के पास बाग में स्वयं ही गये। और बहुत कुछ प्रार्थना करने से विद्या पढ़ने की प्रतिज्ञा करने पर स्वामीजी उन के साथ गये। महाराजा ने उस समय प्रतिज्ञा करली थी कि मैं प्रतिदिन तीन घण्टा पढ़ा करूंगा। तथा यदि मैं किसी दिन न पढ़ूं तो आप निःसन्देह चले आइयेगा। इस नियम पर प्रज्ञाचक्षुजी इन के साथ अलवर को गये और वहां तीन चार वर्षतक महाराजा को पढ़ाने तथा स्वयं भी ज्ञान ध्यान करने में लगे रहे।

गम्भीर बुद्धि और सत्यवादी होने के कारण इस राज्य में स्वामीजी का ध-
र्मात्मा लोग अति मान करते थे। परन्तु स्वार्थी और मिथ्या प्रशंसा करने वाले (खु-
शामदी) ब्राह्मण इनकी आकृति से भी घृणा करते थे। तथा इसी लीला में मग्न र-
हते थे कि येनकेन प्रकारेण विरजानन्दजी को महाराजा की दृष्टि से गिरा देवें प-
रन्तु महाराजा उनको सच्चा अपूर्व साहसी (बेधड़क) चित्तवाला जानते हुये सर्वद
उनकी पूरी प्रतिष्ठा करते थे। यद्यपि महात्मा को ज्ञात हो गया था कि बुभुक्षित
लोग द्वेषाग्नि से जलते हुये गुप्तरूप से महाराजा के कानों तक मेरी निन्दा पहुंच
रहे हैं, परन्तु उक्त महात्मासिंह सदृश निडर अपने कार्य में तत्पर रहे, तथा कदापि
सिद्धान्तों से गिरने का नाम तक न लिया। महाराजाजी ने स्वामीजी के रहने के
एक बहुत सुन्दर गृह दिया था। तथा पुस्तकें और अन्य आवश्यक सामग्री भी प
क्त्रित करदी थी। मानो कई सहस्र का धन स्वामीजी के हाथ में था॥

महाराजा अपनी प्रतिज्ञानुसार प्रतिदिन स्वामीजी से पढ़ने को आया करते
थे, परन्तु एक दिन नाच तमाशे आदि में लगे रहने के कारण विना सूचना पढ़ने
को न गये। स्वामीजी उचित समय पर अपने स्थान पर महाराजा की बाट देख
रहे थे परन्तु न तो महाराजा स्वयं ही गये और न किसी दूत द्वारा कहला भेजा
अनन्तर जब महाराजा बहुत समय बिता कर आये तो व्रतधारी तपस्वी ने जो आप
नियम में चलना और अन्यों को नियम में चलाना चाहते थे, प्रतिज्ञा न पालने के
विषय में महाराजा से अपनी अप्रसन्नता प्रगट की। और सरल वाणी से कहने लगे
कि आपने प्रतिज्ञा भङ्ग की है, परन्तु मैं प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं कर सक्ता। अतएव मैं अब
यहां नहीं रह सक्ता। महाराजा उनको रक्खा चाहते थे परन्तु वे व्रतधारी प्रतिज्ञा
तोड़ कर कब रह सक्ते थे? तथाच एक दिन स्वामीजी विना सूचना दिये ही वहां
से चल पड़े तथा सहस्रों के धन और पुस्तकों को वहां ही छोड़ा। केवल भविष्यत
व्यय के लिये ढाईसहस्र रुपया अपने सङ्ग लेलिया और भरतपुर में पहुंचे॥

यहां महाराजा बलवन्तसिंह के यहां षट्मास पर्यन्त रहे और जब विदा होने
लगे तो महाराज ने आदर सत्कार के लिये ४००) रुपया और एक दुशाला भेंट किया। वहां से मुरसान ग्राम में आये और राजा साहब टीकमसिंहजी मुरसान नि-
वासी के अतिथि हुये। तत्पश्चात् सोरों स्थान को गये जहां पर इनको रोग ने घेर
लिया और यह ऐसे रोगी हो गये कि जीवनाशा तक न रही परन्तु विरजानन्दजी
को संसार में किसी गुप्त कोष की कुञ्जी सौंपनी थी। यदि ये महात्मा उस समय
मृत्यु को प्राप्त हो जाते तो कौन मान सक्ता है कि संसार में कभी भी विरजानन्द

का नाम सुना जाता। शनैः २ रोग घटने लगा और स्वामीजी फिर संसार में वरने लगे ॥ ६४

वहां से चलकर स्वामीजी संवत् १८९३ वि० में यमुना नदी के तट पर मथुरा गर को पधारे। यहां पर गताश्रम नारायण के मन्दिर में कई दिन विद्यार्थियों को ढ़ाते रहे और तत्पश्चात् अपना ही एक निवासस्थान किराये के गृह में नियत क- के नियमपूर्वक पाठशाला बनाके सिद्धान्तकौमुदी मनोरमा न्याय मुक्तावली न्याय ोष व कई वैदिक ग्रन्थ पढ़ाने लगे ॥

कुछ दिनों पश्चात् ऐसा हुआ कि वैष्णव सम्प्रदाय के विख्यात आचार्य जिन ा नाम रङ्गाचार्य था मथुरा में आये और उन्होंने सेठ राधाकृष्णजी को अपना शिष्य कया। जिन दिनों रङ्गाचार्य मथुरा में थे उन्हीं दिनों का वृत्तान्त है कि इनके गुरु ृष्ण शास्त्री दक्षिण से पधारे थे। कृष्ण शास्त्री न्याय और व्याकरण के प्रसिद्ध वि- ान् थे। एक दिन शास्त्रीजी के दो विद्यार्थियों (लक्ष्मणज्योति और सुदर्शनिया प- ड्या) का शास्त्रार्थ विरजानन्दजी के दो विद्यार्थियों (चौबे गङ्गादत्त और रंगदत्त) ो हो पड़ा कृष्ण शास्त्री के विद्यार्थियों ने पूछा कि "अजाद्युक्तिः" इस वाक्य में कौन मास है। स्वामीजी के विद्यार्थियों ने कहा कि षष्ठीतत्पुरुष है। कृष्णशास्त्री के वि- ार्थियों ने कहा कि नहीं सप्तमीतत्पुरुष है। इस झगड़े को दोनों ने जाकर अपने २ ुरुओं से कहा। कृष्ण शास्त्री ने विद्यार्थियों से कहा कि इसमें सप्तमी तत्पुरुष हो- ाक्ता है षष्ठीतत्पुरुष नहीं बनसक्ता। दण्डी विरजानन्दजी ने कहा कि षष्ठीतत्पुरुष सप्तमी नहीं इस बात पर दोनों ओर वालों का शास्त्रार्थ होना स्थिर हुआ। तथा ००) दो २ सौ रुपये प्रत्येक की ओर से हार जीत के रक्खे गये। सेठ राधाकृष्ण ी इसमें मध्यस्थ बने जिन्होंने १००) एकसौ रु० अपनी ओर से भी रख दिया। यह ल ५००) सेठजी की दुकान में जमा कर दिया गया और गताश्रम नारायण का न्दिर शास्त्रार्थ के लिये नियत हुआ। नगर में दावानल के सदृश इस शास्त्रार्थ की र्चा सर्वसाधारण में फैल गई तथा मथुरानिवासी जिनको चौबे और पहलवानों ; दङ्गल देखने का अभ्यास था अब विद्यारसिक पहलवानों के युद्ध देखने के सच्चे भिलाषी होरहे थे। नियत दिवस को सन्ध्या समय सब लोग इस विद्या के अखा- को देखने के लिये एकत्रित हुये तथा च नियत समय पर दण्डीजी ने अपने वि- ार्थी भेजे कि यदि कृष्ण शास्त्री आये हों तो हम चलें परन्तु कृष्ण शास्त्री न आये। ब दण्डीजी के विद्यार्थी गये तो सेठजी ने दोनों ओर के विद्यार्थियों में शास्त्रार्थ ारम्भ करादिया तथा कुछ देर शास्त्रार्थ कराने के पश्चात् यह प्रसिद्ध करदिया

कि दण्डीजी हार गये तथा यमुनामैया की जय २ करने वाले लट्ठमारों को रुपैया बांटना आरम्भ करदिया । सत्यप्रिय सज्जनगण आश्चर्य करके चकित रहगये कि यह क्या हुआ तथा दण्डीजी क्यों हारगये और कृष्ण शास्त्री क्योंकर जीत गये जब कि इन दोनों का शास्त्रार्थ ही नहीं हुआ । इससे ज्ञात होता है कि कृष्ण शास्त्री ने डूबते को तिनके का सहारा समझ के यह ढोंग बनाया था । परन्तु दण्डीजी की पराक्रम शालिनी बुद्धि इस बात का निर्णय किये बिना कब रहसक्ती थी । यह कब सम्भव था कि दण्डीजी अन्याय और अधर्म की कार्यवाही की पोल न खोलें । तथाच महाराज दण्डीजी ने मथुरा के कलेक्टर श्रीमान् अलेग्ज़ण्डर साहब से मिल कर कहा कि यातो सेठजी से मेरा रुपया दिलवा दीजिये नहीं तो कृष्णशास्त्री से शास्त्रार्थ कराइये । इस पर उक्त श्रीमान् ने यह उत्तर दिया कि इस में हम हस्तक्षेप नहीं कर सकते । सेठ धनाढ्य है अतएव आप उस से झगड़ा न करें, जिस विषय में आप १) व्यय करेंगे उस में वह १०००) कर सकता है ॥

सेठजी ने इस बीच व्यवस्था विक्रेता पण्डितों के पास शास्त्रार्थ पत्र भेजा और उन से व्यवस्था मांगी कि किस का पक्ष सच्चा और किस का झूंठा है । इस समय पं० काकाराम शास्त्री, गौड़ स्वामी, काशीनाथ शास्त्री, आदि विद्वान् काशी में जीवित थे । इन उक्त विद्वानों को घूंस देकर सेठ ने इन धर्म विक्रय करने वाले जीवित देहधारियों परन्तु मृतसदृशों से अपने पक्ष की पुष्टि में हस्ताक्षर लेलिये । जब दण्डीजी ने अपना पत्र उन के पास भेजा तो उन्हों ने उत्तर दिया कि यद्यपि आप का पक्ष सत्य है परन्तु हम प्रथम से सेठजी के पत्र (काग़ज़) पर हस्ताक्षर कर चुके हैं अतएव आप का उत्तर नहीं दे सक्ते । पण्डितों की ओर से यह उत्तर देख कर दण्डी जी के मन में धर्म और आचार से रहित विद्वानों की ओर क्या २ विचार हुये होंगे ? क्या उस समय दण्डीजी के शुद्ध मन ने अनुभव नहीं किया होगा कि भारतवर्ष के शिरोमणि पण्डित आत्मघात करते हुये, ऋषिसन्तान को कलङ्कित कर रहे हैं । क्या उन के सरल हृदय में शोक नहीं हुआ होगा कि टके के बदले धर्म बिक रहा है । इस महान् पापाचार को देख कर दण्डीजी के मन में क्रोध उत्पन्न हुआ और धन्य है वह उचित क्रोध जो पाप नष्ट करने के लिये सरल आत्मा में उत्पन्न हो । उनके मन में यह विचार हुआ कि कुछ यह आवश्यक नहीं कि और नगरों के पण्डितों ने भी टके को ही धर्म (ईमान) मान रक्खा हो । अतएव आगरादि स्थानों के पण्डितों की सम्मति लेना आवश्यक है । सम्भव है कि वह निष्पक्षता से सत्य को प्रकट करें । तस्मात् उसी धुनि में वे आगरा को गये । और सदर बोर्ड (उ-

कचहरी) में साहब बहादुर से मिले। उन दिनों वहां चरणजीव शास्त्री धर्म-
ास्त्र की व्यवस्था देने वाले थे जिनको सर्कार से ३००) रु० मासिक मिलता था।
ण्डीजी उनसे भी मिले और कहा कि या तो तुम मेरे रुपये दिला दो नहीं तो मेरे
ख पर हस्ताक्षर करो। उन्होंने भी वही उत्तर दिया कि हम भी हस्ताक्षर कर
के हैं। आप झगड़ा न करें, आप को रुपया कदापि न मिलेगा। कहते हैं कि इन-
ा सेठजी ने उक्त स्वार्थ निमित्त ३००) दिये थे। जब दण्डीजी ने देखा कि इस
मय पाप प्रबल होरहा है और सत्य की कोई नहीं सुनता तो हार थक कर घर जा
। कौन जानता था कि यह घटना उनके जीवन में नहीं २ वरन संसार के इतिहास
एक अद्भुत परिवर्तनशालिनी होगी। कौन कह सक्ता था कि सेव का गिरना न्यू-
न * महाशय को पुनर्वार आर्यसिद्धान्त का दर्शन करायेगा। किसने जाना था कि
ने का खड़कना † स्टीम-इञ्जन (धुंवे की कलों) आदि की उत्पत्ति का चिन्ह
गा। कौन जानता था कि ‡ कोलम्बस महाशय का मार्ग भूलजाना सहस्रों वर्ष
गुप्त भूभाग का दर्शन करायेगा? महान् पुरुषों के इतिहासों में साधारण घटनायें
उनके भविष्यत् असाधारण होने के लिये आदि स्तम्भ प्रमाणित हुई हैं। और
वमुच यही अवस्था विरजानन्दजी के साथ इस धांधली की पराजय से हुई।

एमर्सन महाशय का यह कथन ठीक है कि मनुष्य में शक्ति उसकी दुर्बलता उत्पन्न होती है तथा मनुष्य को जब अति दुःख और पीड़ा होती है तभी वह उ-
त और बड़े २ कार्यों के करने योग्य बन जाता है। मानो दुर्बलता और पराजय
वित आत्मा में शक्ति उत्पन्न करने का सामर्थ्य रखती है। तथा इस धींगाधींगी की
ाजय ने विरजानन्द के जीवित आत्मा पर ठीक यही परिणाम डाला यद्यपि वह
नते थे कि मैं सत्य पर हूं परन्तु इन के पास और कोई उत्तम साक्षी न था जो उन
पक्ष की अच्छी तरह पुष्टि करता और काशी तथा आगरा के धर्मविक्रेता पण्डितों

* ये इंगलेण्ड देशीय विद्वान् थे, सेव फल का वृक्ष से नीचे पृथिवी पर गिरना देख कर इन्होंने इस पर विचार दौड़ाया कि यह फल नीचे क्यों गिरा ऊपर क्यों न चला गया। अनन्तर उन्होंने यह किया कि आकर्षण शक्ति से ऐसा हुआ और साइन्स विद्या का मूल यही है ॥

† पानी और आग से भाफ द्वारा रेलादि का चलना जो विद्या है इसको एक यूरुपदेशीय ने इस प्रकट किया कि एक समय दाल की बटुली के ऊपर रक्खा हुआ ढकना हिलने लगा इससे उसने सिद्धान्त निकाला कि आग से पानी भाफ बन कर बड़ी भारी शक्ति रखता है। तदनन्तर उसने रेल इञ्जन की कल निर्माण की।

‡ कोलम्बस नामी स्पेनदेशवासी भारतवर्ष की खोज के लिये समुद्र में चले थे परन्तु जहाज दूसरी चला गया इससे अमेरिका अर्थात् पाताल देश का पता लग गया ॥

के विरुद्ध सब के सामने सत्य की साक्षी देसकती। इस प्रकार की साक्षी ढूंढने के निमित्त वह इधर उधर संस्कृत के ग्रन्थों की छान बीन करने लगे। वह चाहते थे कि किसी ऋषि की साक्षी मिले। जिस से कि यह आर्यसिद्धान्त कि "सत्य की जय होती है" सत्य ही प्रमाणित (साबित) हो जावे ॥

इस खोज ही में थे कि दण्डी जी ने प्रातःकाल एक दक्षिणी ब्राह्मण को अष्टाध्यायी पाठ करते हुये सुना यह ब्राह्मण प्रतिदिन नियमपूर्वक पाठ करता था परन्तु भित्ति (दीवारों) पर पाठ का क्या प्रभाव पड़ सक्ता है। किन्तु जब इस पाठ की ध्वनि विरजानन्दजीकी धर्म प्रिय जिज्ञासु आत्मा के निष्पक्ष श्रोत्रों में पहुंची तब वह आत्मा मानों समाधिस्थ होकर महर्षि पाणिनि के अनमोल सूत्रों को सुनने लगा। जब तक उस (पण्डित) ने अष्टाध्यायी का सम्पूर्ण पाठ समाप्त न किया तब तक एक चित्त विरजानन्द जी की वृत्ति उसी में खचित रही, और तत्पश्चात् सुने हुये पाठ को विचारा उन के आत्मा के उस समय के हर्षका अनुमान कौन कर सकता है जिस समय कि इनको निश्चय होगया था कि अष्टाध्यायी ही निसन्देह ऋषिकृत ग्रन्थ है तथा यही ५००० पांच सहस्र वर्ष से संस्कृत विद्या के गुप्त बहुमूल्य कोष के प्रकट करने का एक मात्र साधन है।

कोलम्बस महाशय ने अमेरिका की पृथिवी को सृजा नहीं था किन्तु खोज मात्र किया था। इञ्जन बनाने वाले ने भाफ को उत्पन्न नहीं किया वरन उस के गुणों को जाना। ठीक इसी प्रकार विरजानन्द जी ने अष्टाध्यायी को रचा नहीं किन्तु पूर्व विरचित इस अष्टाध्यायी की महिमा को जिस का नाममात्र साधारण पण्डित लोग भाफ सदृश जानते थे, अनुभव किया।

भाफ की महिमा अनुभव करने वाले ने संसार में क्या कर दिखाया और ऋषिकृत अष्टाध्यायी के गुणों और महिमाको अनुभव करनेवाले विरजानन्द अब क्या कुछ नहीं करेंगे। अष्टाध्यायी ने जिज्ञासु को निश्चय करा दिया और साक्षी देदी कि तू सत्य पर है और कृष्णशास्त्री झूठा है अष्टाध्यायी पश्चिमीय हिन्द, (अमेरिका वा पाताल) के टापू के सदृश थी जो कि ऋषियों के समय को प्रख्यात करने वाले विरजानन्द के हस्तगत हुई (जो ऋषियों का समय) ५ पांच सहस्र वर्ष से गुप्त था। परन्तु जैसे (अमेरिका के मिलने पर) ब्राज़िल व मैक्सको ज्ञात हुये विना कब रह सकते थे वैसे ही अष्टाध्यायी के मिलजाने पर उस की व्याख्या महाभाष्य जो अष्टाध्यायी से घना सम्बन्ध रखती है विरजानन्द के हाथ लगगई। तथा इन्हीं दो पुस्तकों के मनन ने उन को दो और ज्योतिस्तम्भ जिन का नाम निरुक्त और निघ-

हु हैं दर्शा दिये। तथाच वे संसार को आर्यों की सभ्यता, आर्यों के शास्त्र आर्यों
ी विद्याओं और कलाओं तथा सर्वोन्नतियों और उन विद्याओं और कलाओं के नि-
यस्रोतरूपी वेदों तक का मार्ग और श्रेष्ठ मार्ग अष्टाध्यायी महाभाष्य, निघण्टु और
निरुक्त को बतला रहे हैं उनका परोपकारी, परिश्रमी, सत्यप्रिय आत्मा इस अमूल्य
धन को सर्वसाधारण तक पहुंचाने का विचार कर रहा है ॥

तथा इसी कारण से विरजानन्द ने अपनी आयु संवत् १९१४ से लेकर म-
रण पर्यन्त ऋषिकृत ग्रन्थों के प्रचार के लिये व्यतीत की ॥

मिस्र देश की पुरानी सभ्यता और प्राचीनता के विषय में पश्चिमीय भूभाग
योरोप देश) ने तब से ठीक २ विश्वास किया कि जब रोज़ीटा स्टोन उनके हाथ
गया। कहते हैं जब नैपोलियन के सिपाही मिस्र में जा रहे थे तो एक बूशर नामी
सिपाही ने रोज़िटा स्थान पर यह पत्थर प्राप्त किया जिस का नाम अब सांसारिक
तिहास में रोज़ीटा का पत्थर है। इस पर विचित्र (अनोखी) भाषा व चिह्नों द्वारा
कुछ लिखा हुआ था तथा यूनानी भाषा में भी कुछ बातें थीं। डाक्टर टामसनेग और
न फ्रांसिस ने लगातार प्रयत्न करते २ इसको पढ़ा। इस लेख का पढ़ना ही था
कि योरोप देश को मिस्र की पुरानी भाषा का पता लग गया। जिसे सिखाने वाला
ध्यापक अब कोई जीवित नहीं। इस पत्थर के लेख ने जादू का काम किया तथा
सर्व पश्चिमी भूभाग वालों ने एकमत हो निस्सन्देह कह दिया कि मिस्रदेश अ-
यन्त उच्च कक्षा का सभ्य और विद्याओं तथा कलाकौशलादि का एक मात्र अनुपम
गार था। यदि यह पत्थर उन विवेचना करने वाले पश्चिम भूभागियों के हस्तगत
ा होता तो फिर प्राचीन मिस्र के विषय में लोगों को सिवाय इसके और कुछ वि-
चार न होता कि वे (मिस्र देशीय) अर्द्धशिक्षित और महामूर्ख थे। इस पत्थर की
ातिष्ठा पश्चिम देशीय ही जानते हैं तथा अब इङ्गलैंड देश को अभिमान (फ़ख़)
है कि यह पत्थर अन्त में उसके भूपति श्री महाराजा जार्ज ३ तीसरे के हाथ आ
या ॥

बड़े ऊंचे २ स्तम्भ (मीनार) वाले देश का पुराना इतिहास जैसे इस पत्थर
की सहायता विना जानना कठिन था वैसे ही वरन उससे सहस्रगुणा अधिक क-
ठिनता सुवर्णमयी आर्यावर्त्त की प्राचीन विश्वासजनक तथा मनुष्यमात्र की अमूल्य
सम्पत्ति (मीरास) वेद को जानना विवेचकों के लिये था। ऋषि मुनियों का पु-
राना समय तथा उस समय के प्राचीन मुख्य धारा वेद के स्वरूप को लोग कैसे जा-
न सक्ते। यदि विरजानन्द अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निघण्टु और निरुक्त का पारस

पत्थर न खोज देते, इस पारस पत्थर का पता लगाने वाले विरजानन्द का नाम संसार के इतिहास में अति प्रतिष्ठा से लिया जायगा। इस पारस पत्थर के मिलने का ही यह फल हुआ कि संसार को पता लग गया कि वेदों में मूर्त्तिपूजा, मनुष्यपूजा अग्नि और अन्य तत्वपूजा नहीं है। वह वेद जिनको कि अन्धेरे में टटोलने वाले पुरुषों ने केवल प्रार्थनाओं की व्यर्थ पुस्तक समझ लिया था इस पारस पत्थर की सहायता से विद्यारूपी ज्योति को अनुपम प्राकृतिक सूर्य्य जाने गये हैं तमोमयी संसार को सचमुच सुवर्णमयी कर दिया और इसी कारण हम अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निघण्टु और निरुक्त का नाम पारस पत्थर रखते हुये विरजानन्द के बाधित हैं ऋषियों की भाषा तथा वेदों का अर्थ समझने के लिये हर एक विवेचक को इस पत्थर की आवश्यता है। और जितने भाष्य मैक्समूलर, विल्सन आदि साहबों ने इस पारसपत्थर की सहायता विना किये हैं वह मनुष्य को सुवर्णमयी समय का पता देने की जगह में लोहे के तुल्य अन्धकारमय समय की ओर आकर्षण करते हैं संसार के प्राचीन इतिहास को जानने के लिये इस पारस पत्थर की प्रत्येक सत्य प्रिय को आवश्यकता है। मनुष्य की सच्ची स्वाभाविक भाषा समझने के लिये इस की सहायता उपयोगी है। तथा इस पारस पत्थर का ज्ञात होना सांसारिक इतिहास में एक बड़ा भारी स्मारक रहेगा ॥

जब कि मथुरा में यह घटना हो चुकी तो इस के षट्मास पश्चात् कृष्ण शास्त्री के विद्यार्थी लक्ष्मण ज्योतिषी बहुत बीमार हुए और उन का पाप उनको भय देने लगा। कहते हैं कि जब मृत्युप्राय थे तो उन्होंने सेठ जी से कहा कि कदाचित दण्डी जी ने मुझ पर कोई मारण मोहन मन्त्र चलाया है। उन को प्रसन्न करना उचित है। तदनुसार सेठ जी ने दण्डी जी को कहला भेजा कि आप ५००) की जगह १०००) सहस्र रुपये ले लें और क्षमा करें। दण्डी जी ने उत्तर दिया कि हमारा यह धर्म नहीं है। किसी मनुष्य के करने से कुछ नहीं होता यह तुम को केवल भ्रम है यदि वह मेरे उद्योग से बच जावे तौभी मैं सहस्र अपने पास से देने को उद्यत हूं। अनन्तर दूसरे दिन लक्ष्मण ज्योतिषी की मृत्यु हो गई अष्टाध्यायी और महाभाष्य की महिमा को जानने पर वे अपने व्यतीत परिश्रम को जो कि सिद्धान्तकौमुदी आदि तुच्छ ग्रन्थों के पढ़ाने में व्यय हुआ व्यर्थ बीता समझते थे। जिस सूत्र ने प्रथम उन को शास्त्रार्थ निमित्त सत्यसाक्षी दिया वह यह है—" कर्त्तृकर्मणोः कृति "

सूर्य का दर्शन करने वाले का चित्त जैसे बनावटी धुएंदार ज्योति (चिराग) से घृणा करने लगता है इसीप्रकार दण्डी का हाल हुआ ॥

मनोरमा, शेखर, न्यायमुक्तावली, सारस्वत, चन्द्रिका, पञ्चदशी आदि नवीन बनावटी ज्योतियों के तुच्छ, प्रकाश को अष्टाध्यायी आदि ऋषि मुनि कृत सूर्य ग्रन्थों के सामने (मुक़ाबले) बिलकुल व्यर्थ ही समझने लगे। अपनी पाठशाला में ऋषिकृत ग्रन्थों को पढ़ाते व तुच्छ ग्रन्थों की ओर से मनुष्योंके चित्त को हटाते थे। उस समय उन के विद्यार्थी पुण्डरीक, गोपीनाथ दक्षिणी, सोमनाथ चौबे, गङ्गादत्त तथा रङ्गदत्त आदि थे।

तदन्तर संवत् १९१५ में युगलकिशोर, चिरञ्जीवलाल, सोहनलाल, गोपाल ब्रह्मचारी, नन्दनजी चौबे हुए। और ये सब अष्टाध्यायी, महाभाष्य पढ़ते थे। परन्तु ऋषि विरजानन्द की पूर्ण अभिलाषा परोपकार करने की थी। वे चाहते थे कि जिस प्रकार होसके संसार भर में ऋषिकृत ग्रन्थों और ईश्वरकृत वेदों का प्रचार हो जिससे भूला हुआ संसार सन्मार्ग को पासके। उनको यह बात अच्छे प्रकार विदित होचुकी थी कि मेरे वश में सूर्य का प्रकाश है जिसके सामने कोई बड़ी चमकीली ज्योति भी नहीं ठहर सकती। परन्तु इस प्रकार के सामान पास वर्त्तमान न थे कि वे अपने महान्भाव को पूरा करने में कृतकार्य होते। तथापि यह अपना मन्तव्य (इरादा) उन्होंने कई वार प्रकाश किया। तथा च एक वार्त्ता (वार्या) उनके इस ऋषिभाव प्रमाण में अत्यन्त ही अद्भुत है॥

संवत् १९१७ के अन्त और संवत् १९१८ के आदि में आगरा नगर में राजाओं का दर्बार हुआ था जिसके उत्सव में महाराज रामसिंहजी जयपुराधीश भी आगरा में पधारे थे। उन्होंने दण्डीजी महाराज को बुलाया और सत्कारपूर्वक अपने पास ठहराया तीसरे दिन जब महाराजा जयपुर से दण्डीजी का मिलाप (मुलाक़ात) हुआ तो उस समय पं० केदारनाथ शास्त्री बूंदी के पं० पुरन्दरसिंह रीवां के पं० राजजीवन ओझा त्रिहुत के नैयायिक ये सब महाराजा के पास सुशोभित थे जब दण्डीजी गये इन्हें देख कर महाराज अपने सिंहासन से नीचे उतर द्वार तक आकर स्वयं दण्डीजी का हाथ पकड़ के अपने साथ लेगये तथा राजसिंहासन पर उनको बैठाकर आप उनका मान रखते हुए नीचे बैठे। उस समय दण्डीजी के साथ तीन विद्यार्थी युगलकिशोर व जगन्नाथ चौबे थे।

विद्यार्थियों ने जाकर महाराज की सेवा में दण्डीजी की ओर से एक यज्ञोपवीत एक नारियल और कुछ मथुरा के पेड़े भेंट किये। भेंट स्वीकार करने के पश्चात् महाराजा ने दण्डीजी से वार्त्तालाप करना आरम्भ किया। अन्य बातें करते

हुये यह प्रार्थना की कि किसी प्रकार आप हमें व्याकरण पढ़ा दो कि जिस से हमको वेदार्थ का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो तथा आधुनिक सम्प्रदाय का विषय हमारे मन से दूर हो। दण्डीजी ने कहा कि आप नहीं पढ़ सक्के। हां यदि ३ घण्टा प्रतिदिन परिश्रम करो तो पढ़ सक्के हो। यदि आप ऐसी प्रतिज्ञा करें तो हम पढ़ाने का वचन (वादा) दे सक्के हैं। जिस पर महाराजा रामसिंहजी मौन हो रहे और कुछ जवाब न दिया। फिर महाराजा बोले कि अष्टाध्यायी और महाभाष्य मुझे नहीं आ सक्के परन्तु आप अन्य ग्रन्थ बना कर उनकी जगह में पढ़ावें। तब दण्डीजी ने कहा कि इनका कोई अन्य ग्रन्थ नहीं बन सक्ता। जैसे सूर्य्य के प्रतिबिम्ब को कोई तोड़ कर नया नहीं कर सक्ता यही अवस्था ठीक २ इन ग्रन्थों की है। तब महाराज रामसिंहजी ने कहा कि कोई ऐसा उपाय बताओ कि जिससे मेरी कीर्त्ति हो, दण्डीजी ने उत्तर दिया कि आप सार्वभौम सभा करें। तीन लक्ष रुपये आप का व्यय होगा गवर्नर जेनेरल साहब से प्रथम आज्ञा ले लें तत्पश्चात् जब सब पृथिवी के पण्डित एकत्र हों तो पण्डितों के लिये उचित दक्षिणा नियत करना योग्य है और शास्त्रार्थ का विषय यह हो कि अष्टाध्यायी, महाभाष्य, व्याकरण के मुख्य ग्रन्थ हैं तथा कौमुदी मनोरमा आदि ग्रन्थ मनुष्यकृत और अशुद्ध हैं। तथा न्याय मुक्तावली आदि और भागवतादि पुराण रघुवंशादि काव्य, वेदान्त में पञ्चदशी आदि और नवीन सम्प्रदायी जितने ग्रन्थ हैं सब अशुद्ध हैं ॥

जब सब विद्वान् एकत्र होंगे तो सब के सामने हम दोघण्टे में सब को निश्चय करादेंगे, तथा आप को विजयपत्र दिलवा देंगे। अतएव ऐसे शास्त्रार्थ की सफलता में विक्रमादित्य सदृश आप के नाम का शक (संवत्) प्रवृत्त करादेंगे तब राजा ने प्रतिज्ञा की कि मैं सार्वभौम सभा करूंगा। इस समय महाराजा के दीवान पं० शिवदीनसिंह बोले कि आप जयपुर पधारें। दण्डीजीने उत्तर दिया कि आप न कहें यदि राजा रामसिंहजी कहें तो हम चलें परन्तु महाराजा रामसिंहजी ने कुछ उत्तर न दिया चुपके सुनते रहे। उस समय दण्डीजी ने यह भी कहा कि यदि तुम इस काम को करोगे तो तुम्हारी कीर्ति होगी। नहीं तो जिस प्रकार कुत्ते और गधे मरजाते हैं उसी प्रकार तुम्हारे मरने पश्चात् तुम्हें कोई भी याद न करेगा। इतना कह कर दण्डीजी उठ खड़े हुये। चलते समय महाराजा रामसिंहजी ने २००)रुपये दो सुवर्ण मुद्रा (अशर्फी) और एक दुशाला भेट किया परन्तु उन्होंने नहीं लिया और यह कह कर चल दिये कि हम रुपये लेने को नहीं आये इस की हमें कुछ परवाह नहीं। षट् मास पश्चात् महाराजा रामसिंहजी ने दो सो रुपये और दुशा-

लादि सब वस्तुएं मथुरा में भेज दिया और ॥) आठ आना प्रति दिन इन के व्यय के निमित्त दिये जाने की आज्ञा कर दी। इसी प्रकार ।) प्रति दिवस महाराज विनय-सिंहजी भी दिया करते थे और दण्डी जी इस में अपना जीवन निर्वाह कर लेते थे।

परोपकारी विरजानन्द जी विद्यार्थियों को पिता के समान पढ़ाया करते थे। उनके सुधार के लिये उनको दण्ड देते और शुभाचरण की ओर नित्य रुचि दिलाते थे। परन्तु उन की अत्यन्त इच्छा यह थी कि मेरा कोई भी विद्यार्थी ऐसा उत्कृष्ट हो सके जो परोपकार के लिये अपना जीवन लगाता हुआ मनुष्य जाति और प्राणिमात्र के कल्याण का मार्ग विस्तृत कर सके। संवत् १९१७ के चैत्र मास में एक सत्य के जिज्ञासु विद्यार्थी स्वामी दयानन्द नामी उनके समीप आगये। जिस प्रकार रेखा गणित (उक्लेदिस) से अनभिज्ञ मनुष्य अफ़लातून का शिष्य नहीं हो सक्ता था उसी प्रकार व्याकरण का न जानने वाला विरजानन्द का शिष्य नहीं हो सक्ता था। व्याकरण जानने के कारण ही ऋषि विरजानन्द ने विद्यार्थी दयानन्द को शिष्य बनाया। तत्पश्चात् कौमुदी आदि ग्रन्थ जो उन के पास थे, यमुना नदी में फेंकवा दिये। और जब दयानन्द जी यमुना में निश्चय ग्रन्थ बहा कर आगये तो ऋषि ने कहा कि अपनी बुद्धि से भी इन ग्रन्थों के विचार को पृथक् कर दो। तब अष्टाध्यायी पढ़ाऊंगा। दण्डी जी ने यह निश्चय कर लिया था कि भागवतादि पुराणों और सिद्धान्त आदि अनार्षग्रन्थों ने संसार में अत्यन्त मूर्खता और स्वार्थपरता का राज्य फैला रक्खा है। इसी कारण वे इन भ्रष्ट ग्रन्थों के कर्त्ताओं की ओर से अपने विद्यार्थियों को अत्यन्त घृणा दिलाना चाहते थे। तथाच इस कार्य की पूर्त्ति के लिये उन्होंने एक जूता रख छोड़ा था और सिद्धान्तकौमुदी के कर्त्ता भट्टोजिदीक्षित की मूर्त्ति को वे सब विद्यार्थियों से जूते लगवाते थे। क्योंकि उनका कथन था कि इसी नीच ने संस्कृत विद्या की कुञ्जी अष्टाध्यायी के प्रचार को रोकने के लिये यह क्षुद्र ग्रन्थ बना रक्खा है। कभी भागवत पुराण की पुस्तक को यह कहते हुये, अपने पांव लगा देते थे कि इन पुराणों ने ही भ्रम जाल फैला कर लोगों को विद्या बुद्धि और पुरुषार्थ से हीन कर देया है। सब से बढ़ कर उच्च कक्षा की प्रतिष्ठा वे वेदों की किया करते थे तथा इन्हीं को सूर्यवत् स्वतः प्रमाण कहते थे॥

अष्टाध्यायी, महाभाष्य व्याकरण में दण्डीजी ने पूर्ण योग्यता प्राप्त की कि भारतवर्ष में कोई भी इन की तुल्यता का घमण्ड नहीं कर सक्ता था। इन की तीव्र बुद्धि और स्मरणशक्ति उच्च कक्षा की थी। नियमपालन में ऐसे पक्के थे मानो नियम के अवतार ही थे। सत्य से प्रेम और असत्य से अति घृणा इनके मन का सङ्कल्प

था। इनकी विद्या की ख्याति दूर २ तक फैली थी तथा मथुरा की अद्भुत वस्तुओं में यात्री लोग इन दण्डीजी को भी मानते थे।

इन की श्रेष्ठ विद्वत्ता की प्रशंसा से आकर्षित होकर ही स्वामी दयानन्द ने इन को अपना गुरु धारण किया था और निश्चय दयानन्द ऐसे महान् आत्मा की तृप्ति ऐसे ही विद्या के सूर्य से हो सकती थी।

एक बार प्रिन्स आफ वेल्ज़ श्री महाराणी राजराजेश्वरी क युवराज मथुरा में आये, और इन्होंने यहां के पण्डितों को अपने समीप बुलाया, दण्डीजी अपने विद्यार्थियों सहित गये। वहां अंगरेजों ने उन से कुछ पूछा तथा एक अंगरेज ने जो स्यात् उच्चाधिकारी था, वेद की श्रुति बहुत भद्दे और अशुद्ध उच्चारण से पढ़ी। सुनते ही दण्डीजी ने कहा कि न जाने ऐसे अशुद्ध उच्चारण करनेवाले को वेद पढ़ने का अधिकार किस ने देदिया, दण्डी जी का सत्य कथन सुन के वह अंगरेज महाशय अप्रसन्न नहीं हुये। वरन उन्होंने इनकी वीरता का बखान किया और कहा कि हम ने ऐसा साहसी पुरुष कोई नहीं देखा। संवत् १९२० में गोपाललाल गोस्वामी गोकुल वाले ने दण्डीजी को बुलाया क्योंकि उनके यहां बम्बई के विख्यात् पण्डित गट्टूलालजी अष्टावधानी ठहरे थे।

दण्डीजी गयाप्रसाद व दामोदरदत्त विद्यार्थियों सहित वहां गये। इस समय इन्हों ने गट्टूलाल जी से दण्डीजी का सम्भाषण कराया और शास्त्रार्थ का विषय "एधितव्यम्" था। दण्डीजी ने एधितव्यम् वाला श्लोक चौबे दामोदरदत्त से लिखवाया और स्वयं भाष्य किया जिससे गट्टूजी को परास्त किया। इस पर गोसांई जी ने इन का बहुत ही आदर सत्कार किया व कहा कि मथुराजी दूर हैं नहीं तो हम प्रत्येक दिन आकर दर्शन करते व पढ़ते। काशी में जोकि पण्डितों की राजधानी थी दण्डीजी की अद्भुत विद्या और शास्त्र बल की चर्चा फैल गई तथा जिन विद्यार्थियों की कठिनतायें काशी में न्यून नहीं हो सकी थी वे काशी छोड़ कर मथुरा में विरजानन्दजी का शरण लेने लगे और देशदेशान्तरों के विद्यार्थी तथा पण्डित लोग इन से लाभ उठाने के लिये आने लगे। तथा व्रजकिशोर विद्यार्थी जो बराबर सात वर्ष काशी में पढ़े थे, काशी छोड़कर दण्डीजी से मथुरा में अष्टाध्यायी का आरम्भ किया। तदनन्तर पं० उदयप्रकाश पं० हरिकृष्ण पं० दीनबन्धु पं० गणेशीलाल ये सब दण्डीजी के विद्यार्थी बने।

इन्हीं दिनों का वृत्तान्त है, कि ग्वालियर के विख्यात वैयाकरण पं० गोपा-
ाचार्य्य महाराज मथुरा में पधारे, सेठ गुरुसहायमल ने इनकी वैयाकरण की शोभा
न कर इन्हें एकसौ रुपया भेंट किया ॥

स्वामी विरजानन्दजी ने सेठजी से कहा कि पण्डित समझ कर आप जितना
हें उन्हें दान दें, परन्तु यदि आप वैयाकरण के विचार से देते हो तो हमें भी
श्चित करादें कि वे निस्संदेह वैयाकरण हैं । गुरुसहाय ने इसका कुछ उचित
तर न दिया परन्तु विश्वेश्वर शास्त्री ने जो कि काशी के पण्डित थे उस समय
ुरा में वर्त्तमान थे, इस बात को उचित समझा और गोपालाचार्य्यजी से दण्डी
ा का शास्त्रार्थ ठहराया । इस विख्यात शास्त्रार्थ के मध्यस्थ रङ्गाचार्य्य हुये । तथा
दावन में रङ्गाचार्य्यजी के मन्दिर में दोनों दल एकत्र हुये । विषय यह था कि दो
ार के भाव महाभाष्य में लिखे हैं । आभ्यन्तर और बाह्य । गोपालाचार्य्य कहते
कि महाभाष्य में नहीं हैं । दण्डीजी कहते थे कि महाभाष्य में हैं, तथाच दण्डी
ने रङ्गाचार्य्य को सब पण्डितों के सामने दोनों भाव आभ्यन्तर और बाह्य महा-
ष्य के "सार्वधातुके यक्" इस सूत्र में बतला दिये । जिससे दण्डीजी की विद्वत्ता
यश सब पण्डितों में फैल गया । व इससे भी रङ्गाचार्य्यजी ने दण्डीजी की अ-
न्त ही प्रशंसा की । इस महान् विजय से दण्डीजी को और भी दृढ़ निश्चय हो-
ा कि ऋषिकृत ग्रन्थों के सामने मनुष्यकृत ग्रन्थ नहीं ठहर सक्ते और जहां तक
सके संसार में वेद वेदाङ्ग उपाङ्ग का प्रचार करना उचित है ॥

दण्डीजी जैसे कौमुदी आदि व्याकरण के तुच्छ ग्रन्थों का खण्डन बड़ी पुष्ट-
से करते थे उसी प्रकार अति पुष्टता से मथुरा जैसे स्थान में रहकर भी जो हि-
ओं का विख्यात मूर्त्तिस्थान है, मूर्त्तियों पन्थों तथा सम्प्रदायों और इन सब के
ा पुराणों का भी खण्डन करते थे ॥

जब कहीं किसी सम्प्रदाय का झगड़ा होता था तो लोग सम्प्रदाय का मूल
नने के लिये दण्डीजी की सहायता लेते थे । तथाच महाराजा रामसिंहजी के य-
से प्रायः दण्डीजी की सेवा में लिखित प्रश्न आया करते थे और दण्डीजी सम्प्र-
ायियों के खण्डन के विषय में पत्र लिखा करते थे । इनके पत्रों का ऐसा प्रभाव
ा कि कई सम्प्रदायी लोग राजाज्ञा से देश से निकाल दिये गये ॥

बड़े २ विख्यात पण्डित शास्त्री नैयायिक महाराज के निकट देश देशान्तरों
अपना बल दिखाने आये और शास्त्रार्थ में पराजय को प्राप्त हुये ॥

एक समय का वृत्तान्त है कि कोई तीव्रबुद्धि (ज़हीन) पण्डित दण्डीजी ब
बुद्धि की तीव्रता सुन के ईर्ष्या से पीड़ित दण्डीजी का पराजय करने के हेतु आ
और इस ढंग से वार्त्तालाप आरम्भ किया कि अपने आप को बहुत थोड़ा कहना पं
और दण्डीजी को बहुत। जब दण्डीजी कहचुकते तो यह तीव्रबुद्धि पण्डित कह देत
कि महाराज आपने कौन सी बढ़िया बात कही है यह तो दासको भी विदित है
तथाच दण्डीजी के कथन के एक २ शब्द को सुना देता, थोड़े ही मिनटों में दण्ड
जी ताड़ गये कि यह कोई चालाक पण्डित है । फिर जो कुछ कथन किया उस
दण्डीजी ने साधारण संस्कृत शब्दों के स्थान में उनके ही समान वेद शब्द जो
णपाठ में आये हैं अधिकता से रक्खे तब चुप हो गये गणपाठ का संस्कृत इस चा
लाक पण्डित ने पूर्व नहीं सुना था अतएव तीव्र होने पर भी सारा कथन तो क
आधे को भी याद न रख सका। और कहने लगा कि महाराज आप निश्चय विद
के सूर्य्य हैं। मैंने कई बड़े से बड़े पण्डितों को इस ढङ्ग से पराजित करदिया थ
परन्तु आप की प्राचीन संस्कृत तथा वैदिक शब्दों की योग्यता मुझ को एक प
भी चलने नहीं देती। जिन शब्दों का मुझे संस्कार ही नहीं और न जिनके अर्थ स
मझ सक्ता हूं उनको मेरी बुद्धि कैसे स्मरण रख सक्ती ॥

मुरसान में रङ्गाचार्य्य के गुरु अनन्ताचार्य्य से दण्डीजी का एक बड़ा भार
शास्त्रार्थ हुआ जोकि तीन मास तक होता रहा परन्तु अन्त को अनन्ताचार्य्य भा
गये और ज़बानी शास्त्रार्थ करने की शक्ति न रख कर कहने लगे कि अब गृह को जा
कर पत्रद्वारा शास्त्रार्थ करूंगा ॥

बाल ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होनेके कारण उनका मस्तिष्क एक पुस्तका
लय का काम देता था, जिस ग्रन्थ को ध्यानपूर्वक एक वार सुना बस वह उन क
होगया, वे अपनी सारी विद्या कण्ठ रखते थे, कविता करने में ये बड़े प्रवीण थे प
रन्तु इन को ऋषिकृत ग्रन्थों के प्रचार की अभिलाषा थी अतएव कोई अपनी नवी
रचना नाम के निमित्त छोड़ना कदापि न चाहते थे। दुःखों और शारीरिक कष्टों
इन्होंने अखण्ड ब्रह्मचर्य्य के कारण सहा ही नहीं वरन जीता हुआ था। तथा य
अखण्ड ब्रह्मचारी ही होने का कारण था कि उन्होंने संसार की काया पलटाने
लिये ऋषियों के सदृश वैदिकप्रकाश को दर्शा दिया ॥

दण्डी जी का भोज्य सदा साधारण ही रहा । आदि में वे कई बार दू
या केवल खरबूजा या केवल पूरी या केवल नारङ्गी और कई बार सौंफ़ दूध में प
काकर कुछ दिन ही नहीं वरन एक मास तक खाया करते थे। दण्डीजी मालकङ्

ा और लौङ्ग अधिक खाया करते और कहते थे कि यह बुद्धिवर्द्धक वस्तुयें हैं। न्ध २ ऋतुओं में वैद्यक शास्त्रानुसार कोई २ विशेष वस्तु खाना छोड़ देते थे ॥

एक वार जब कि उनका सब शरीर सूज गया था तो गङ्गा के किनारे वैद्यक ास्त्र में लिखी एक औषध* का सेवन करते थे यहां तक कि शरीर के ऊपरी भाग ो बहुत खाल उतर गयी और फिर दुबारा कञ्चनकाया हो गई। वे कभी२ मेंथीका ाग आध पाव घी डाल कर खाते व कभी कभी सवासेर दूध और छटांक सोंठका वन करते थे ॥

छुहारे की गुठली कुटवा कर दूध में डाल कर उस दूध को पीते थे। एक स-य सन्दूक में सङ्खिया पड़ा हुआ था सेंधा नमक के विचार से तोला भर सङ्खिया ा गये। खाने के थोड़ी देर पश्चात् बिष चढ़ने लगा। मकान पर चार बड़े मटके नी के भरे हुये थे। शनैः २ उन मटकों में से लोटे से पानी निकाल कर सर पर ालते रहे। सन्ध्या तक यही क्रिया करते रहे जिस से सर्वथा क्लेश रहित होगये।

मिस्टर पोस्टली साहब जब स्वल्पकालिक कलक्टर हो कर मथुरा में आये तो क दिन सैर करते हुए विरजानन्द जी के गृह के नीचे से निकले। उनके सहवर्त्ती दण्डी जी की विद्वत्ता की अतिप्रशंसा की। जिस को सुन कर वे दण्डी जी से मि-ने को गये और दण्डी से कहने लगे कि यदि हमारे करने योग्य कोई कार्य हो तो ाज्ञा कीजिये। दण्डी जी ने कहा कि यदि हमारी सेवा कर सक्के हो तो भट्टोजिदी-ात के जितने बनाये हुये कौमुदी के ग्रन्थ हैं उनको भारतवर्ष से या केवल मथुरा लेकर आग में फूंक दो या यमुना में प्रवाह कर दो ॥

एक समय आधी रात के लगभग विचारते हुये किसी सूत्र का समाधान म-में ठीक होगया। मारे हर्ष के गृह से उठे और विद्यार्थी उदयप्रकाश के गृह के र पर जाकर पुकारा। गुरुजी का शब्द सुन वह जागा और पूंछने लगा कि महा-ज आज्ञा कीजिये। कहने लगे कि इस समय मुझे अमुक सूत्र का समाधान याद आ-है जो शेषजी से भी नहीं होसका है। यह हर्ष सूचना देने आया हूं। ऐसा न कि भूल जाऊं अतएव उचित है कि लिख लो। तथाच उसने लिख लिया ॥

उनका ऊंचान (क़द) मियाना (मध्यम) और वर्ण गौर मिलित था। जब वर्ष के हुये तो अपनी सब पुस्तकें बरतन, कपड़े और तीन सौ रुपया नक़द या-सब ५२५) के द्रव्य को अपने विद्यार्थी युगलकिशोर के नाम रजिस्टरी करादी।

* नोट-भिलावां इस औषध का नाम प्रायः ज्ञात होता है। ठीक २ पढ़ा नहीं जाता (आत्माराम)

कहते हैं कि मृत्यु से दो वर्ष पूर्व योगी विरजानन्द ने विद्यार्थियों से कह दिया थ कि मैं शूल की पीड़ा से अमुक दिन शरीर त्यागूंगा। और जो एक दो सेठ मरने से कुछ दिन पूर्व मिलने को आये उनसे कहा कि भविष्य में यहां न आना ॥

ऋषियों के छोड़े हुए ग्रन्थ रूपी धन का प्रेमी, वेदों की निष्कलङ्क ज्योति ऋषिकृत ग्रन्थों के सहारे से दर्शाने वाला ब्रह्मचारी, यौगिक शब्दों के सच्चे पारस पत्थर से तमोमयी लोहे को चमकते हुए सुवर्ण में बदलने वाला ऋषि, मूर्त्तिपूज के गढ़ में रहकर मूर्त्तिपूजा की जड़ पर कुल्हाड़ा मारने वाला वीर, योग समाधि से आत्मशक्तियें बढ़ाने वाला महात्मा, परोपकार की रक्षा से विद्यार्थियों के मन में वैदिकज्योति पहुंचाने वाला गुरु, बिना शोक के परलोक गमन को उद्यत होता है।

तथा कुंवार के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को सोमवार के दिन विक्रमीय संवत १९२५ में अपने पाञ्चभौतिक शरीर को छोड़ कर सज्जनों के हृदय अपने वियोग से सदैव के लिये भेदन कर जाता है ॥

इस ऋषि का विद्यारूपी प्रकाश उसके सब विद्यार्थियों के लिये समान थ परन्तु मट्टी व कांच पर एक ही प्रकाश का भिन्न २ प्रभाव पड़ता है ऋषि के अनेक विद्यार्थियों में से केवल एक दयानन्द सरस्वती के ही शुद्ध हृदय ने उस प्रकाश को अपने अन्तर प्राप्त करके फिर अपने में से उस प्रकाश को निकाल जगत् में फैला दिया ॥

ऋषि विरजानन्द का महत्व और श्रेष्ठता उन वचनों से प्रकट हो सकती है जोकि उनकी मृत्यु के समाचार सुनने पर उन के योग्य विद्यार्थी स्वामी दयानन्दसरस्वती ने अपने मुख से इस प्रकार निकाले थे कि "आज व्याकरण का सूर्य अस्त होगया।"

हीरा (मणि) की महिमा सर्राफ़ (रत्नपरीक्षक) से पूछिये। सुक़रात की योग्यता अफ़लातून जानता था। ऋषि विरजानन्द की महिमा ऋषि दयानन्द पहिचानता था। यदि किसी मिथ्याप्रशंसक (खुशामदी) के ये वचन होते तो हम उस को अयुक्त कह सकते थे परन्तु ऋषि दयानन्द का उनको सूर्य कहना कुछ कारण वश सम्भव है। योगी विरजानन्द का महत्व इससे भी बढ़ कर हमको तब प्रतीत होता है जब हमको यह ज्ञात होता है कि परोपकारी बाल ब्रह्मचारी आर्यसमाज का आदिकर्त्ता (बानी) वैदिकधर्म का दर्शक महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के अन्त

वेदभाष्य के प्रत्यङ्क की समाप्ति में अपने को अभिमान (फ़ख़) से स्वामी वि-
नन्द सरस्वती का शिष्य लिखता है ॥

विवेचक लोग स्वामी दयानन्द के गुरु परम * विद्वान् ऋषि विरजानन्द के
पकार को नहीं भूल सके । तथा सत्यप्रिय लोगों के ज्ञान नेत्रों के सन्मुख महा-
विरजानन्द निष्कलङ्क ज्योति का प्रकाश करने के निमित्त पुराणादि मिथ्या क-
कल्पित और कौमुदी आदि अनार्ष ग्रन्थों के विघ्नों को शूरवीर के सदृश आर्ष
थरूपी खड्ग बल के द्वारा एक हाथ से काटता और दूसरे से वेदशास्त्रों के गुप्त
र्थों की यौगिक कुञ्जी जो कि महाभारत के घोर युद्ध पश्चात् लुप्त प्रायः होगई
मनुष्यमात्र के हाथ में देने के लिये एक अद्भुत परोपकारी विद्यार्थी स्वामी द-
नन्द को सौंपता हुआ सचमुच ऋषि के रूप में दृष्टिगोचर होगा ।

गुरु विरजानन्द ...
... पुर 1786
... दयानन्द ...

* सत्यार्थप्रकाश के अन्त में यह शब्द स्वयं श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ने उनके महत्त्व में प्रयोग
[illegible]ा है ॥